शोध

शिक्षा का अधिकार

यह राह नहीं आसान

प्रियंका, योगेन्द्र एवं सुधीर

शिक्षा के अधिकार कानून में गरीब एवं वंचित वर्ग के बच्चों के लिए निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत सीटों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है। यह राजस्थान के आठ निजी स्कूलों में किए गए एक लघु-अध्ययन पर आधारित लेख है। यह लेख इस प्रावधान की संकल्पना और क्रियान्वयन के बीच के फासले एवं चुनौतियों को प्रस्तुत करता है।

ऐतिहासिक परिदृश्य

भारत में शिक्षा का अधिकार कानून बनने का लंबा इतिहास रहा है। करीब 132 साल पहले ज्योतिबा फुले ने 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों की अनिवार्य शिक्षा की मांग रखी थी।[1] 1911 में गोपालकृष्ण गोखले ने इम्पीरियल लेजिसलेटिव असेम्बली में, 1937 में महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् की बैठक में सभी बच्चों के लिए सात वर्ष की अनिवार्य शिक्षा के लिए नैतिक मांग रखी तथा 1948-49 में संविधान सभा में 14 वर्ष तक के सभी बच्चों की शिक्षा की मांग रखी गई। परन्तु संसाधनों के अभाव का तर्क देकर इसे लगातार अनसुना किया गया। संविधान के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अनुच्छेद 45 में 14 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा का प्रावधान किए जाने के कारण अनेक परियोजनाओं के माध्यम से सरकारों द्वारा सभी बच्चों की शिक्षा के प्रयास किए गए। बावजूद इसके सभी बच्चों की शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका। उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 1992[2] तथा 1993[3] में कहा कि बगैर शिक्षा के जीवन का अधिकार अधूरा है। अतः 14 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा राज्य की जिम्मेदारी है। 2002 में संविधान में 86वां संशोधन किया गया और अन्ततः 1 अप्रैल, 2010 को 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों की अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के लिए मौलिक अधिकार बना।[4] इस कानून में समस्त निजी स्कूलों में वंचित समूह के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित कर निःशुल्क शिक्षा देने का प्रावधान भी है। राजस्थान सरकार ने तीन वर्ष पहले 29 मार्च, 2011 को इस कानून के विस्तृत नियम एवं क्रियान्वयन की अधिसूचना[5] जारी की।

हमने शिक्षा के अधिकार कानून के तहत निजी स्कूलों में वंचित वर्ग के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधानों के क्रियान्वयन को समझने के लिए एक लघु अध्ययन किया है। मोटेतौर पर इसके उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:

- निजी स्कूलों में वर्ष 2011 से 2013 के दौरान वंचित समूह के बच्चों के प्रवेश और ठहराव के आंकड़ों का विश्लेषण एवं इसके क्रियान्वयन के पक्ष को समझना।
- निजी स्कूलों में वंचित समूह के बच्चों के 25 प्रतिशत आरक्षण के संदर्भ में स्कूल प्रबंधन, शिक्षकों, अभिभावकों तथा राज्य प्रतिनिधि के नजरियों को समझना।

यह अध्ययन जयपुर जिले के आठ (चार शहरी एवं चार ग्रामीण)

प्रियंका: अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर से आरंभिक शिक्षा में एम.ए. करने के बाद दिगन्तर में बतौर एसोशिएट फैलो कार्यरत हैं।

योगेन्द्र: पिछले करीब चार साल से दिगन्तर, जयपुर में बतौर असिस्टेंट फैलो कार्यरत हैं।

सुधीर: लगभग डेढ़ दशक से शिक्षा के क्षेत्र में कार्य और वर्तमान में दिगन्तर, जयपुर में बतौर एसोशिएट फैलो कार्यरत हैं।

निजी स्कूलों (चार स्कूल केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड तथा चार राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा मान्यता प्राप्त) में किया गया। सैंपल साइज छोटा होने की वजह से नतीजों का सामान्यीकरण मुश्किल है बावजूद इसके यह अध्ययन शिक्षा के अधिकार कानून के क्रियान्वयन की एक बानगी तो पेश करता ही है। अध्ययन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक विधियों का प्रयोग करते हुए डेटा संकलन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है। अध्ययन के कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष इस प्रकार रहेः

नियमों एवं क्रियान्वयन में दूरियां

राजस्थान सरकार ने 2011 में इसके क्रियान्वयन की अधिसूचना जारी कर दी थी, लेकिन सरकार के ढीले-ढाले रवैये के चलते कानून का क्रियान्वयन समय पर संभव नहीं हो पाया। शिक्षा के अधिकार कानून की संकल्पना और क्रियान्वयन के बीच दूरियां इसकी प्रवेश प्रक्रिया, सत्यापन, पुनर्भरण, प्रशिक्षण आदि पहलुओं में दिखाई देती हैं। नीचे दी गई तालिका में तीन साल के आंकडे इसकी पुष्टि करते हैंः

वर्ष	राजस्थान में				आठ स्कूल		
	कुल निजी स्कूल*	प्रवेश देने वाले स्कूलों संख्या**	आर.टी.ई के तहत दाखिल बच्चे**	सत्यापित बच्चे**	स्कूल	आवेदन	दाखिल बच्चे
2011–12	30,040	17,190	1,48,798	0	0	0	0
2012–13	32,314	14,755	1,33,463	1,00,001	4	34	34
2013–14	33,866	20,523	2,03,530	–	8	242	75

** State Report Card-Rajasthan, SSA ** http://dee.raj.nic.in*

तालिका से पता चलता है कि राज्य सरकार ने वर्ष 2011 में शून्य और 2012 में 33,462 बच्चों के प्रवेश को पुनर्भरण योग्य नहीं माना। 2011 में प्रवेश प्राप्त बच्चों एवं 2012 में जिन बच्चों को पुनर्भरण योग्य नहीं माना गया, उनके प्रति जवाबदेही से सरकार ने किनारा कर लिया है। अर्थात्, 2011 में प्रवेश प्राप्त बच्चों की अगले सात-आठ सालों की शिक्षा के खर्च की जिम्मेदारी किसकी होगी और 2012 में 33,462 बच्चों का प्रक्रियाओं अथवा नियमों की नासमझी की वजह से सरकार द्वारा पुनर्भरण योग्य नहीं पाए जाने पर जिम्मेदार कौन होगा? तीन वर्षों में राजस्थान में प्राप्त आवेदनों और स्कूल छोड़ने वाले बच्चों का डेटा उपलब्ध नहीं है परन्तु आठ स्कूलों का पैटर्न यह दर्शाता है कि 9 प्रतिशत बच्चों ने दूसरे वर्ष में स्कूल छोड़ दिया। अध्ययन किए गए स्कूलों में पहले वर्ष किसी भी स्कूल द्वारा लॉटरी नहीं निकाली गई क्योंकि प्राप्त आवेदनों और दाखिल होने वाले बच्चों की संख्या बराबर थी। इसका अर्थ है कि सरकार एवं स्कूलों द्वारा पर्याप्त प्रचार-प्रसार नहीं किया गया। वंचित समूह के लिए आरक्षित सीटों की घोषणा, फॉर्म जमा करने एवं प्रवेश की रसीद, अभिभावक को सूचना आदि नहीं दी गई। अधिकांश अभिभावक प्रवेश प्रक्रिया, दस्तावेज आदि की अनभिज्ञता के अलावा ये भी नहीं जानते कि उनके बच्चों का प्रवेश किस नियम के तहत हुआ है, किस कक्षा तक पढ़ाई निःशुल्क होगी और उन्हें स्कूल के द्वारा क्या निःशुल्क मिलेगा? इस स्थिति के चलते अभिभावक अपने को भ्रमित पाते हैं। एक अभिभावक ने बतायाः

> ''सर, हमें इस बात का सबूत मिले कि हमारा बच्चा फ्री हो गया है। अब हम लोग तो गरीब आदमी हैं, कल अगर कुछ हो तो हमारे पास सबूत तो होना चाहिए। स्कूल वाले अगर कल ही कह दें कि फीस दो तो हम क्या करेंगे? ...क्या सुविधाएं मिल रही हैं उसके बारे में पता तो चले हमें। पिछली बार भी लड़की के दाखिले के समय यह कहा गया था और बाद में उसकी यह कहकर फीस ले ली कि हमें आगे से नहीं मिला है।'' (अभिभावक)

ग्रामीण क्षेत्र में इन बच्चों को स्कूल आने के लिए 10 से 12 किलोमीटर की दूरी तय करनी पड़ती है जबकि प्रावधान के अनुसार संबंधित वार्ड/गांव/शहर की परिधि से बाहर के बच्चों का प्रवेश मान्य नहीं है। इन स्कूलों में

उन बच्चों को प्रवेश दिया गया है जिनके भाई या बहन पहले से उसी स्कूल में पढ़ रहे हैं। इसका अर्थ है कि या तो नियमों की अनदेखी की गई है या शिक्षा विभाग के द्वारा प्रवेश प्राप्त बच्चों के सत्यापन की व्यवस्था में कोई खामी है। यह एक बड़े पैमाने पर अध्ययन की मांग करता है कि इन बच्चों के लिए प्रवेश प्रक्रिया, दस्तावेज एवं सत्यापन के मापदण्ड एवं स्कूल छोड़ने के पैटर्न क्या हैं और उनकी पालना किस हद तक हो रही है?

निःशुल्क शिक्षा माने क्या?

शिक्षा का अधिकार कानून 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा का अधिकार देता है। इसके बावजूद हमारे अध्ययन के अनुसार अभिभावकों को कई मदों, जैसे दस्तावेज बनवाने में औसत 700 रुपये तक, पाठ्यपुस्तक एवं स्टेशनरी में 1500 रुपये, यूनिफॉर्म 1200 रुपये, गतिविधि के नाम पर 300 रुपये और परिवहन के 3000 रुपये सालाना खर्च करने पड़ते हैं। एक अभिभावक ने बतायाः

> ''आय प्रमाण पत्र बनाने के लिए दो-तीन दिन लग गए। काम से छुट्टी लेनी पड़ी। 500-600 रुपये का खर्च आ गया और इसमें छुट्टियों को मिला लो तो 1000-1500 रुपये का खर्चा पड़ गया। बहुत भीड़ होती है वहां। बोल देते हैं कि कल आओ, परसों आओ।'' (अभिभावक)

एक शहरी स्कूल में पाठ्यपुस्तकें एवं स्टेशनरी निःशुल्क दी गई है, अन्य स्कूलों में यह सामग्री स्कूल द्वारा तय दुकान से खरीदनी होती है। ये पाठ्यपुस्तकें निजी प्रकाशकों की होने के कारण सरकारी स्कूलों में चलने वाली पाठ्यपुस्तकों से दो से तीन गुना महंगी होती हैं। गतिविधियों के नाम पर अभिभावकों से या तो पैसा मंगाया जाता है या फिर गतिविधि से पहले आवश्यक चीजें मंगा ली जाती हैं। एक स्कूल प्रबंधक का कहना थाः

> ''...पर इन बच्चों के साथ कुछ प्रॉब्लम्स हैं जैसे ये प्रॉपर ड्रैस में नहीं आते हैं, स्कूल में होने वाले फंक्शन में पार्टीसिपेट नहीं करते हैं। इनके पेरेंट्स भी इनको पार्टीसिपेट नहीं करवाते हैं क्योंकि फंक्शन के लिए अमाउंट जमा होता है। एक्टीविटीज भी नहीं करवाते हैं।'' (स्कूल प्रबंधक)

ऐसी स्थिति में इन बच्चों की गतिविधियों में भागीदारी का पैमाना उनकी रुचि एवं योग्यता न होकर उनके आर्थिक पक्ष पर निर्भर हो जाता है। इन बच्चों को ट्यूशन करने की सलाह भी दी जाती है और एक स्कूल द्वारा तो प्रवेश शुल्क भी लिया गया है। स्कूल प्रबंधक भी स्कूल में इनकी सफलता के प्रति आश्वस्त नहीं नजर आतेः

> ''लेकिन आगे की क्लॉसेज में जाकर ये बच्चे कैसे कर पाएंगे? पढ़ाई का लेवल और टफ हो जाएगा। ये कैसे फेस कर पाएंगे? कैसे इनके पेरेंट्स खर्चे को अर्फोड कर पाएंगे?'' (स्कूल प्रबंधक)

राज्य सरकार में भी यह स्पष्टता नहीं है कि निःशुल्क शिक्षा को कैसे सुनिश्चित किए जाएः

> ''किसी प्रकार की कोई राशि शिक्षा के लिए नहीं ली जाएगी। सरकारी स्कूलों में तो बच्चे को पाठ्यपुस्तकें निःशुल्क उपलब्ध करवाई जाती हैं। परन्तु परेशानी यह है कि सरकारी स्कूलों में जो पुस्तकें आती हैं उनकी कीमत निजी स्कूलों में उपयोग की जाने वाली पुस्तकों के मुकाबले बहुत कम होती है। हम तो चाहते हैं कि निजी स्कूल अपने इस खर्च में किताबों पर होने वाले खर्च को भी शामिल करें। यूनीफॉर्म और स्टेशनरी आदि तो सरकारी स्कूल में दाखिल बच्चों को भी वहन करनी पड़ती है इसलिए इस संबंध में बहुत कुछ नहीं कहा जा सकता है।'' (प्रतिनिधि, आरटीई, राज्य इकाई)

जवाबदेही एवं पारदर्शिता

इस नियम को समझने एवं लागू करने के लिए प्रशिक्षण, प्रचार सामग्री, प्रचार-प्रसार एवं पुनर्भरण आदि कार्य में सरकार को बहुत ज्यादा सफलता नहीं मिली है। कानून के बेहतर क्रियान्वयन के लिए कानून के प्रावधानों पर निजी स्कूलों की समझ बनाने के लिए दिया गया प्रशिक्षण भी अपर्याप्त नजर आता हैः

> ''एक दिन की ट्रेनिंग मिली थी जिसमें प्रिंसीपल उपस्थित थीं। उस ट्रेनिंग में सिर्फ व्यवस्था संबंधी मामले और प्रक्रियाओं को ही स्पष्ट किया गया था कि किस तरह से फॉर्म लेने हैं, उसका प्रारूप क्या होगा। ...आदि।'' (स्कूल प्रबंधक)

साथ ही इस प्रशिक्षण की विषयवस्तु से वे पक्ष नदारद थे जो इस कानून की समझ विकसित करने में मददगार हो सकते थे। जैसे, इस कानून की जरूरत, निजी स्कूलों की भूमिका, कक्षा में शिक्षणशास्त्रीय बदलाव आदि। प्रशिक्षण मुख्यतः प्रवेश प्रक्रिया, आवश्यक दस्तावेज, सत्यापन, पोर्टल पर अपलोड करने आदि पर केन्द्रित था। प्रशिक्षण कॉस्केड मॉडल पर आधारित थे। प्रशिक्षण दल की तैयारी अपर्याप्त थी। इसके बारे में बताया गयाः

> ''सत्यापन हेतु गठित दल का एक दिवसीय ओरियंटेशन पिछले वर्ष एडुसेट के माध्यम से किया गया था। डीईओ ऑफिस तो एडुसेट से कनेक्ट थे और उन्होंने अपने सवाल भी हमारे सामने रखे, परन्तु ब्लॉक स्तर पर यह सुविधा अभी एक तरफा है जिसमें वहां पर उपस्थित लोग तो हमें सुन सकते हैं परन्तु वे वहां से सवाल नहीं पूछ सकते। इस पर हमने उन्हें अपने सवाल ई-मेल के माध्यम से लिखकर भेजने को कहा और उन सवालों को हमने बाद में संबोधित किया।'' (प्रतिनिधि, आरटीई, राज्य इकाई)

निजी स्कूलों में बड़े पैमाने पर प्रवेश प्रक्रिया और कानून की मॉनिटरिंग से जुड़े अधिकारियों की इस कानून के बारे में समझ बनाना भी राज्य सरकार के लिए एक बड़ी चुनौती रही हैः

> ''सत्यापन दल बनाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। पिछले वर्ष इस कार्य हुते लगभग 7 हजार व्यक्तियों की आवश्यकता थी। इस वर्ष स्कूलों की संख्या बढ़ने से हमें और अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी।'' (प्रतिनिधि, आरटीई, राज्य इकाई)

वर्तमान में राज्य में 33,866 निजी स्कूल हैं और अभी तक 20,523 स्कूलों ने इन बच्चों को प्री-प्राइमरी स्तर पर प्रवेश दिया है। यानी, लगभग 45 प्रतिशत निजी स्कूल अभी इसके दायरे से बाहर हैं। जब सभी निजी स्कूलों में दाखिले शुरू हो जाएंगे तब केवल सत्यापन के लिए ही और अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होगी तथा इसका बच्चों की शिक्षा पर प्रतिकूल असर पड़ेगा क्योंकि ये व्यक्ति सरकारी विभाग या स्कूल से आएंगे।

2.50 लाख रुपये की आय सीमा और आय प्रमाण पत्र बनवाने की प्रक्रिया की समस्याओं के चलते वास्तव में वंचित वर्ग की श्रेणी में घुसपैठ शुरू हो गई है और इस वजह से कमजोर तबके के बजाए संपन्न तबके के अभिभावक भी इसका फायदा उठाने से नहीं चूकते। निजी स्कूलों के प्रबंधक भी स्पष्ट मापदण्डों के अभाव में बेबस नजर आते हैंः

> ''सरकार ने जो मापदण्ड रखा है उसके हिसाब से एक बड़ी आबादी प्रवेश की हकदार हो गई है। मैंने खुद बोर्ड में यह सवाल रखा है और कहा कि कैसे वंचित तबके के बच्चों को फायदा मिलेगा? मैंने कहा कि प्रवेश लेने वाले बच्चे एससी/एसटी के नहीं हैं और उनके अभिभावकों की आय भी 2.5 लाख से कम नहीं है। अब आप खुद सोच लीजिए की राजस्थान में कितने लोग इस दायरे में आ जाएंगे और असली गरीब को कितना लाभ मिलेगा?''(स्कूल प्रबंधक)

वर्ष 2012 में अधिकतम शुल्क पुनर्भरण राशि 9,748 रुपये और वर्ष 2013 में 11,704 रुपये प्रति बच्चा थी। कम फीस वाले स्कूलों के लिए यह किसी भी प्रकार से घाटे का सौदा नहीं है। परन्तु महंगे निजी स्कूल इस धारा को मजबूरी मानते हैं। उन्हें लगता है कि इससे स्कूल संस्कृति खराब होने के साथ ही उन्हें आर्थिक नुकसान भी उठाना पड़ता हैः

> ''हमारे जैसे छोटे स्कूलों के लिए तो ये अच्छा ही है। ये तो पता है कि इन बच्चों की फीस तो एक समय पर आ ही जाएगी। बाकी की फीस की तो कोई गारंटी ही नहीं होती। समस्या उन स्कूलों को है जिनकी फीस बीस हजार रुपये या इससे अधिक है।'' (स्कूल प्रबंधक)

पुनर्भरण की राशि के मिलने को लेकर कुछ सुधार तो हुआ है परन्तु अभी भी स्कूलों में असंतोष है। आठ में से चार स्कूलों को सूचना मिली है कि उनके प्रवेश सही पाए गए हैं और उन्हें पुनर्भरण की पहली किस्त जारी की जाएगी। परन्तु शेष चार स्कूलों को कोई सूचना नहीं मिली है। स्कूलों का सुझाव है कि पुनर्भरण की एक साफ-सुथरी एवं पारदर्शी व्यवस्था बननी चाहिए जो तय समयावधि में पूरी हो; इससे स्कूलों में संशय की स्थिति खत्म होगी।

प्रचलित धारणाएं, परंपरागत विधियां

इन बच्चों के साथ पक्षपात की आशंका को देखते हुए कानून की धारा 12 में 'स्कूल एवं अध्यापकों के उत्तरदायित्व'[6] में किसी भी तरह के पक्षपात न करने के प्रति स्कूलों को सचेत किया गया है। हमारे अध्ययन में प्रत्यक्ष रूप से किया जाने वाला पक्षपात (इन बच्चों की अलग कक्षा लगाना या इनको अलग से बिठाना) दिखाई नहीं देता परन्तु शिक्षकों की शिक्षा के प्रति समझ अथवा उनके स्वयं के सामाजीकरण की वजह से पक्षपात के उदाहरण नजर आते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक बच्चों के विभिन्न सामाजिक संदर्भों को सीखने-सिखाने में 'फंड्स ऑफ नॉलेज' के तौर पर इस्तेमाल नहीं कर पातेः

> ''ऐतिहासिक रूप से संचित और सांस्कृतिक रूप से विकसित ज्ञान, कौशल का वह हिस्सा; जो हमारे पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन की बेहतरी के लिए आवश्यक होता है, उसके लिए फंड्स ऑफ नॉलेज इशारा करता है (ग्रीनबर्ग, 1989)। हमारे पारिवारिक और सामाजिक जीवन में प्रचुरता में उपलब्ध सांस्कृतिक एवं संज्ञानात्मक संसाधनों -फंड्स ऑफ नॉलेज- में कक्षा शिक्षण के लिए काफी संभावना है (मॉल, 1990)।''

परन्तु अधिकांश शिक्षकों ने दोनों तरह के बच्चों की पृष्ठभमि के बारे में अनभिज्ञता जाहिर की। साथ ही इससे अनभिज्ञ होने को बच्चों के हित में जायज भी ठहराया। उनके अनुसार बच्चों की पृष्ठभूमि जानने से पक्षपात की संभावना बढ़ जाएगीः

> ''टीचर्स सबको पढ़ाते हैं। सबका स्वभाव एक जैसा नहीं होता। अगर उसे (शिक्षक को) पता हो कि यह आरटीई का बच्चा है तो उसमें ऐसी (भेदभाव की) भावना आ ही जाती है।'' (शिक्षक)

शिक्षकों एवं स्कूल प्रबंधन की सीखने के बारे में यह समझ है कि एक साथ पढ़ाने पर सभी बच्चे एक तरह एवं समान गति से सीखते हैं। बच्चों की पृष्ठभूमि और सीखने से उसके रिश्ते की समझ के अभाव में स्कूलों में कक्षाएं एकरूपता लिए हुए थीं। उनमें न तो कोई गतिविधि थी, न ही विधियों में विविधता। शिक्षक परंपरागत तरीके से ही शिक्षण करा रहे थे। जैसे, वर्णमाला, 1 से 100 तक गिनती, पहाड़े और होमवर्क देने एवं चैक करने का कार्य। पहले शिक्षक ब्लैकबोर्ड पर गिनती या वर्णमाला लिखकर उसको बोलने से शुरुआत करते और उसके पीछे बच्चे दोहराते। एक या दो बार के बाद एक बच्चे को खड़ा करके उसी तरह से पूरी प्रक्रिया को दोबारा दोहराते। यही क्रम आगे भी जारी रहता। यह प्रक्रिया 30 मिनट में अधिकतम 10 बार दोहराई गई।

सामान्यतया तथाकथित उच्च जाति समूहों का निम्न जाति समूहों के प्रति एक नकारात्मक या हीन दृष्टि से देखने का नजरिया समाज में मौजूद है और ध्यान न देने पर यह अचेतन रूप से हमारे व्यवहार पर हावी होने लगता है। जातिगत भेदभाव की संभावनाएं एक स्कूल में नजर आईं। इस स्कूल में तथाकथित सवर्ण एवं दलित समूह के बच्चे थे। दलित समूह के बच्चे कक्षा में सबसे पीछे बैठते थे। हमारे आने के कारण दूसरे दिन से इन्हें आगे बिठाया गया। पीछे बैठने की आदत के कारण मौका मिलते ही ये पीछे जाकर बैठ जाते। चार में से एक भी दिन इनको कोई काम करने का अवसर सबसे पहले नहीं मिला। 4-5 बच्चों के बाद इनकी बारी आती थी और हर रोज 4-5 बच्चों का क्रम बदलता था। इन बच्चों पर कक्षा में शिक्षक कम ध्यान देते थे जिसकी शिकायत एक अभिभावक ने कीः

> ''ऐसे बोलती हैं (शिक्षक के लिए) कि आप भी ध्यान दो, हम भी ध्यान देते हैं। ट्यूशन लगवा दो। अब हम कहां से ट्यूशन लगवा सकते हैं, खर्चा ही पूरा नहीं निकलता। ये भी शैतानी करते हैं। इधर-उधर भाग जाते हैं। पता नहीं क्यों स्कूल में इन बच्चों को पीछे बैठाते हैं। मैं तो बोलती हूं कि हमारे बच्चे को आगे बिठाया करो।'' (अभिभावक)

आठ स्कूलों के सैम्पल में यह समस्या एक स्कूल में ही दिखाई देती है, बावजूद इसको यहां इसलिए रखा गया है क्योंकि वर्तमान समाज में जातिगत भेदभाव एक गंभीर समस्या है और भविष्य में इसी मुद्दे पर केन्द्रित अध्ययन किए जाने की आवश्यकता महसूस होती है।

एनसीएफ 2005 सीखने के संदर्भ में कहता है कि 'परंपरागत शिक्षणशास्त्र से हटकर बच्चों के संदर्भ को ध्यान में रखने से उसके सीखने एवं स्कूल के जुड़ाव पर असर पड़ता है। यदि शिक्षक दोनों पृष्ठभूमि के बच्चों की परिस्थितियों को शिक्षण विधि का हिस्सा बनाता है तो आगे चलकर ये बच्चे एक-दूसरे की परिस्थितियों को समझते हुए संवेदनशील होने की संभावनाएं लिए होंगे और एक लोकतांत्रिक एवं बहुसांस्कृतिक राज्य में इसके दीर्घकालीन असर हो सकते हैं जिसमें नागरिक एक-दूसरे के साथ सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार करें।' परन्तु शिक्षक परंपरागत मान्यताओं के कारण पुराने तरीकों से ही कार्य कर रहे हैं। उन्हें कक्षा में इन बच्चों की उपस्थिति से कक्षा में बदलाव की कोई जरूरत नहीं लगती।

अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुभव एवं ज्ञान का उपयोग विभिन्न सामाजिक अवधारणाओं को सिखाने में करते हुए बच्चों को एक-दूसरे के प्रति लिंग, भाषा, संस्कृति, धर्म जैसे मुद्दों पर संवेदनशील बनाया जा सकता है। परन्तु यहां भी दो तरह की समझ दिखाई देती है। (1) शिक्षक और/ स्कूल प्रबंधन को बच्चों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में कोई फर्क दिखाई नहीं देता और जहां यह फर्क नजर आ भी रहा है वहां इसका सीखने-सिखाने से कोई रिश्ता नहीं देख पाते। (2) वंचित समूह के बच्चों की पृष्ठभूमि को सीखने-सिखाने में एक समस्या के तौर पर देखा जाता है। यह दोनों ही तरह की समझ एक-दूसरे को समझने के अवसरों में बाधक है जोकि इस कथन में दिखाई देती है:

> ''ज्यादातर अभिभावक (आरटीई) का इंग्लिश बैकग्राउंड नहीं है तो वे बोलते हैं कि हिंदी में लिखकर भेजो। कुछ बच्चों का तो आज तक होमवर्क ही नहीं होकर आया। लंच बॉक्स में नमकीन और पराठा या फिर सॉस ले आते हैं। कई बार बताया कि यह स्कूल में नहीं लाते। प्रॉपर टिफिन भेजिए परन्तु मानते ही नहीं।'' (स्कूल प्रबंधक)

अंग्रेजी भाषा के न आने को एक समस्या की तरह से देखा जा रहा है और मान्यता है कि होमवर्क पूरा करवाना अभिभावक की जिम्मेदारी है जबकि एनसीएफ 2005 आरंभिक कक्षाओं में इस प्रवृत्ति को समाप्त करने की सिफारिश करता है:

''...गृहकार्य मिलता है और खेलने का अधिकार ही उनसे छीन लिया जाता है। यह चलन अनावश्यक और नुकसानदेह है जो अभिभावकों की दिग्भ्रमित आकांक्षाओं तथा स्कूल-पूर्व शिक्षा के बढ़ते व्यवसायीकरण का परिणाम है, जो बच्चों के विकास और सीखने की इच्छा के लिए बहुत ही हानिकर है।''[7]

स्कूल की एक और चिंता है कि ये बच्चे अपेक्षानुसार लंच नहीं ला पाते जिससे स्कूल की संस्कृति (कल्चर) के खराब होने की संभावनाएं हैं। इस तरह से एक दूसरे की संस्कृति को सीखने का हिस्सा बनाने की बजाए वंचित समूह के बच्चों पर एक खास तरह की सांस्कृतिक चीजें आरोपित हो रही हैं।

शिक्षक एवं प्रबंधन को अपनी मान्यताओं एवं तरीकों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। ये घटनाएं दर्शाती हैं कि भले ही कानूनी बाध्यताओं के चलते हमने भेदभाव को ऊपरी तौर नकारना शुरू कर दिया है पर सच्चाई यह है कि गहराई में हमारे अवचेतन मन में बैठे हुए विचार हमसे ऐसे व्यवहार करवाते हैं जो अनजाने में इन बच्चों के साथ पक्षपात की संभावनाओं को पोषित करते हैं और इसे सामाजीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत कह सकते हैं।

अहसान का भाव

निजी स्कूलों के बारे में यह मान्यता बन गई है कि यहां सरकारी स्कूल की अपेक्षा अच्छी शिक्षा मिलती है। वंचित समूह के बच्चों को निजी स्कूलों में प्रवेश के कारणों में सभी का जवाब था कि इससे कुछ गरीब बच्चों को भी अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। इसके नैतिक एवं सामाजिक पक्ष की तरफ किसी का भी ध्यान नहीं था। ऐसा वंचित समूह पर अहसान जैसा प्रतीत होता है। अभिभावक भी इससे गौरवान्वित हैं और वे भी इसको बजाए हक के अहसान के तौर पर देखते हैं:

> ''हम चाहते हैं कि वो अच्छी इंग्लिश बोले और अपना नाम बनाए। हमें बहुत गर्व होता है कि हमारा बेटा इस स्कूल में पढ़ता है। सब सुनकर चौंक जाते हैं कि वह निजी स्कूल में पढ़ता है।'' (अभिभावक)

शिक्षा के अधिकार कानून के इस प्रावधान के तहत विभिन्न पृष्ठभूमियों का एक साथ होना और उसके भविष्य के समाज पर आने वाले प्रभाव तथा निजी स्कूलों की शिक्षा में सहयोग की नैतिक जिम्मेदारी जैसे पक्ष वर्तमान चिंतन से लगभग गायब हैं।

अंत में,

शिक्षा के अधिकार कानून और स्कूल के अनुभवों को देखते हुए इस नियम की बेहतरी के लिए कुछ बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। कानून की बेहतर समझ बनाने के लिए निजी स्कूलों के लिए इस कानून एवं उसके प्रावधानों पर प्रशिक्षण को अनिवार्य करते हुए उसकी दीर्घकालीन एवं समग्रता में संकल्पना करनी चाहिए। साथ ही शिक्षा विभाग एवं स्थानीय निकाय के अधिकारियों का प्रशिक्षण भी होना चाहिए। इस कार्य में शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठन मदद कर सकते हैं।

इस कानून के आने के बाद एवं निजी स्कूलों में शिक्षणशास्त्रीय पहलुओं पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने पर भी निजी स्कूलों के उन्मुखीकरण की आवश्यकता लगती है जिससे शिक्षक अपने पढ़ाई के परंपरागत तौर-तरीकों में नवीनता ला सकें और इन बच्चों का स्कूल में सीखना सुनिश्चित हो सके। कानून को बेहतर रूप से क्रियान्वित करने के लिए समय-समय पर शोध/अध्ययन आयोजित करने की जरूरत है ताकि सिद्धान्त और व्यवहार के बीच के अंतराल को कम किया जा सके।

राज्य सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निजी स्कूलों में प्रवेश पाने वाले बच्चों के अभिभावकों को किसी भी मद में खर्च न करना पड़े। कानून से प्राप्त हकों के संदर्भ में अभिभावकों को जागरूक किए जाने की आवश्यकता है। ग्रामीण और शहरी इलाके में आय सीमा के अलग मापदण्ड एवं प्रक्रियाएं तय होने से सही मायने में वंचित वर्ग तक इसका लाभ पहुंचाया जा सकता है। कानून के तहत प्रवेश प्रक्रिया, सत्यापन प्रक्रिया एवं पुनर्भरण का एक पारदर्शी एवं प्रभावी तरीका विकसित करना चाहिए।

ब्लॉक स्तर पर कार्यरत शिक्षा अधिकारी को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी निजी स्कूल अपने परिधि क्षेत्र में अभिभावकों तक इस नियम की जानकारी पहुचाएं। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि बच्चों को एक किलोमीटर से अधिक दूर पढ़ाई के लिए न जाना पड़े।

बदलाव के लिए स्कूलों में संवाद एवं चर्चा हेतु मंच विकसित किए जाएं जहां शिक्षक एवं प्रबंधन खुले मन से इन मुद्दों को साझा करें और इसे सीखने-सिखाने के एक अच्छे अवसर के तौर देखना शुरू करें ताकि इन बच्चों के उच्च कक्षाओं में आने पर इनका स्कूल से बहिष्करण (Exclusion) न हो और इनका सीखना सुनिश्चित हो सके।

इस नियम को निजी स्कूलों में लागू करवाने, इसके प्रशिक्षण एवं सत्यापन आदि के लिए प्रत्येक स्तर पर एक अलग टीम की व्यवस्था होनी चाहिए और अच्छा रहेगा कि इन सब चीजों में गैर सरकारी संगठनों का सहयोग हासिल किया जाए। ◆

(इस अध्ययन के लिए इजाजत दिलवाने के लिए हम राजस्थान राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग, जयपुर का आभार व्यक्त करते हैं। यह अध्ययन शिक्षा विमर्श द्वारा करवाया गया है।)

संदर्भ

1. Education Commission Bombay, vol. 11. Calcutta 1884. p. 140-145
2. Mohini Jain V. State of Karnataka, (1992) SC 1958
3. J. P. Unnikrishnan V. State of Andhra Pradesh (1993). SCC 645
4. The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009
5. Government of Rajasthan, Education (Gr-1) Department, Jaipur, March 29, 2011
6. Government of Rajasthan, Education (Gr-1) Department, Jaipur, March 29, 201; 1 p. 7
7. NCF 2005; p. 75